पेरिस
अगस्त १६, २००६

सन्देश संख्या १०२

श्रवण ही प्रकाश और गुरू है जो अन्धकार (मन) को समाप्त करता है

क्या तुम (मन) चाहते हो कि गुरू के शब्द तुम्हें रूपान्तरित कर दें? या तुम उसी अवस्था में रहना चाहते हो जिसमें मन गंभीर उद्‌गारों के मर्मार्थ एवं प्रज्ञा को समाप्त कर देता है और तुम्हें धूर्त ''मैं'' की चालाकियों एवं चालबाजियों में फँसाकर प्रसन्न रखता है । इसी कारण, मन से मुक्ति नहीं हो पाती और निर्मना की अवस्था में जीवन का पुनः आविर्भाव नहीं हो पाता । मूर्ख मन की रक्षा हेतु तुम शब्दों को हाथों में दस्ताने की तरह प्रयोग करते हो और जीवन की जीवन्तता को पराजित करते हो । तुम शब्दों का उपयोग केवल अपनी लोभ–लालसा में फँसे रहने तथा भय से पलायन के लिए करते हो ।

जिस किसी पर भी शिवेन्दु के शब्द आशीष और कृपा की वर्षा करेंगे, उसके सभी विचारों, छवियों तथा वह सब कुछ जिसे वह अच्छी तरह पकड़ रखा है, को शिव हर लेंगे ।

क्या तुम इन शब्दों को ध्यानपूर्वक सुन सकते हो और इनके मर्मार्थ को समझ सकते हो ?

क्या तुम्हारे विश्वासों ने तुम्हें रूपान्तरित और सरल नहीं किया है बल्कि तुम्हें और जटिल बनाया है ।

क्या कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मूसा, यीशु या मोहम्मद कोई भी हों, वस्तुतः किसी के भी पास स्वर्ग–राज्य अर्थात् अमरत्व की कुंजी नहीं है । क्योंकि इस तरह की कोई कुंजी है ही नहीं । मन के निर्मन में विलय से ही इसमें प्रवेश होता है ।

क्या चैतन्य ही ''मैं'' को बाहर करता है न कि तुम्हारे परिधान, उपाधियाँ, दाढ़ी, जटा, तिलक, प्रतीक (गले में लटकता क्रॉस या वैष्णवों की कंठी) आदि।

क्या ''मैं'' के ''प्रयत्न शैथिल्य की प्रज्ञा'' महत्वपूर्ण है न कि उसके ''करने का संकल्प''।

क्या यदि तुम किसी लंगड़े व्यक्ति को देखते हो तो उसके लंगड़ेपन को समझने हेतु तुम्हें भी लंगड़ा बनने की जरूरत नहीं। अनुकरण मत करो और बनो मत । केवल समझदारी और आनन्द में रहो

क्या स्वाध्याय न आत्मचिन्ता है और न ही आत्म केन्द्रित गतिविधि।

क्या मूर्ख मानव शरीर में ही क्रोध का निवास होता है ।

क्या पृथ्वी पर वस्तुओं के गिरने का कारण गुरूत्वाकषण है जबकि लोगों के तथाकथित प्रेम में पड़ने का कारण तुष्टीकरण है ।

क्या चैतन्य तत्क्षण घटित होता है । अतः बुद्धि से परे है । समझदारी सरल है, किन्तु तुलनात्मक रूप से सरल नहीं ।

क्या तथाकथित समझदारी शुचिता एवं सर्जनात्मकता से रहित प्रायः सूचनाओं का संचय और अनुबंधन है ।

क्या शिक्षा हमारे सीखने की प्रक्रिया में प्रतिक्षण बाधक है ।

क्या मिथ्याभिमान और निहित स्वार्थ रूपी कच्चे तेल का पूर्णतया संशोधित शुद्ध तेल है सजगता ।

क्या रुग्ण मानसिकता वाले राजनीतिज्ञों एवं पुरोहितों के हाथ में तकनीकी विकास कुल्हाड़ी के समान है ।

क्या विचार जब निश्चयता एवं स्थायित्व की घोषणा करें जैसे कि ''ईश्वर'', तब यह निश्चित जानो कि वह यथार्थ नहीं है । विचारों की गलाघोंटू पकड़ से मुक्ति ही यथार्थ की तरफ उठाया गया प्रथम एवं अन्तिम कदम है ।

क्या मन निर्मित धर्मशास्त्र ऐसा जहाज है जो जीवन की जीवन्तता से धराशायी हो जाता है ।

क्या भेड़ों के समूह (सम्प्रदाय या पंथ) का निर्दोष सदस्य बनने के लिए, सबसे पहले भेड़ तो बनना ही होगा ।

क्या भय एवं विखण्डन से ग्रसित चेतना कुछ भी यथार्थ प्राप्त नहीं कर सकती ।

क्या विचार मृत होता है । अतः वह जीवन, प्रेम और स्वतन्त्रता का स्पर्श नहीं कर सकता ।

क्या जीवन अस्तित्वमय हर्ष है जब कि मन विषाद और ऊब की चरम उत्तेजना है ।

क्या जीवन में होने के लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना होता । लेकिन मन एवं उसके कुछ बनने की अन्तहीन प्रक्रिया में बने रहने के लिए, तुम्हें हमेशा ही कुछ–न–कुछ करते हुए स्वयं को मारना होगा । तुम्हारे किसी भी धार्मिक, आध्यात्मिक या भौतिक लक्ष्यों में जीवन की कोई रुचि नहीं ।

क्या नामकरण करना असीम की सत्यता को अभद्रतापूर्वक सीमित करना है । नामकरण से व्यक्ति सम्पत्ति बन जाता है । बिना नाम के, सब कुछ शाश्वत अस्तित्व है । नाम विहिन एक पत्थर भी आत्मा है ।
समझदारी का अमृत पीने से व्यक्ति समाधि में होता है और समाधि दुनियादारी है ।

पीवत राम रस लगी खुमारी
।। जग गुरु श्रवण ।।